eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित चेतना और सामाजिक न्यायः एक समालोचनात्मक अध्ययन

रागिनी श्रीवास्तव[1]
[1]शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, डी0जी0 पी0जी0 कालेज, कानपुर उ0प्र0

Received: 01 Jan 2018, Accepted: 15 Jan 2018, Published on line: 31 Jan 2018

Abstract

हिंदी साहित्य के इतिहास में मुंशी प्रेमचंद का स्थान सामाजिक यथार्थवादी साहित्यकार के रूप में सर्वोपरि है। उन्होंने भारतीय समाज की जटिल सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संरचनाओं का अत्यंत संवेदनशील और यथार्थपरक चित्रण किया। विशेष रूप से उनके कथा साहित्य में दलित, शोषित, वंचित तथा हाशिए पर स्थित वर्गों के जीवन–संघर्ष, सामाजिक अपमान, आर्थिक विषमता, जातिगत भेदभाव तथा मानवीय गरिमा के प्रश्नों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। प्रेमचंद ने ऐसे समय में दलित जीवन की पीड़ा को साहित्य का विषय बनाया, जब भारतीय समाज कठोर जाति–व्यवस्था और सामाजिक असमानताओं से ग्रस्त था। उनकी रचनाएँ केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता, मानवाधिकार, नैतिकता तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना का भी सशक्त संदेश देती हैं।

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य प्रेमचंद के कथा साहित्य में निहित दलित चेतना तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा का आलोचनात्मक विश्लेषण करना है। अध्ययन में विशेष रूप से सद्गति, ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम, कफन, मंदिर, गोदान, कर्मभूमि तथा रंगभूमि जैसी प्रमुख कृतियों का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही यह भी देखा जाएगा कि प्रेमचंद का दृष्टिकोण समकालीन दलित विमर्श से किस सीमा तक सामंजस्य रखता है तथा कहाँ उसकी सीमाएँ दिखाई देती हैं। यह अध्ययन गुणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। सामग्री संकलन के लिए प्रेमचंद की मूल कृतियों, आलोचनात्मक ग्रंथों, शोध–पत्रों, पुस्तकों तथा संबंधित द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया जाएगा। विषयवस्तु विश्लेषण तथा तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से कथा–साहित्य में निहित दलित जीवन, जातिगत संरचना, सामाजिक न्याय, समानता, शोषण तथा प्रतिरोध के स्वर का विश्लेषण किया जाएगा। अध्ययन से यह स्पष्ट होने की संभावना है कि प्रेमचंद ने भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत अन्याय को साहित्य के माध्यम से चुनौती दी तथा सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया। यद्यपि उनका दृष्टिकोण आधुनिक दलित साहित्य की वैचारिक आक्रामकता से भिन्न है, फिर भी सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और समान अवसर की स्थापना के लिए उनका साहित्य आज भी अत्यंत प्रासंगिक एवं प्रेरणास्रोत है।

प्रमुख शब्द– प्रेमचंद, दलित चेतना, सामाजिक न्याय, जाति व्यवस्था, सामाजिक यथार्थ, मानवाधिकार, समानता, कथा साहित्य, हिंदी साहित्य, सामाजिक परिवर्तन।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

Introduction

भारतीय समाज का ऐतिहासिक विकास विविध सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं से प्रभावित रहा है। इस विकास यात्रा में जाति–व्यवस्था ने सामाजिक संगठन का एक महत्वपूर्ण आधार निर्मित किया, किंतु समय के साथ यही व्यवस्था सामाजिक असमानता, अस्पृश्यता, शोषण एवं बहिष्करण का प्रमुख कारण बन गई। दलित समुदाय सदियों तक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा शैक्षिक अधिकारों से वंचित रहा। परिणामस्वरूप भारतीय समाज में गहरी विषमता और अन्याय की स्थिति उत्पन्न हुई। उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलनों, महात्मा ज्योतिराव फुले, डॉ. भीमराव आंबेडकर, महात्मा गांधी तथा अनेक समाज–सुधारकों ने दलित समुदाय के अधिकारों तथा सामाजिक समानता के प्रश्न को राष्ट्रीय विमर्श का विषय बनाया। इसी कालखंड में हिंदी साहित्य में यथार्थवादी चेतना का विकास हुआ, जिसके सर्वाधिक प्रभावशाली प्रतिनिधि मुंशी प्रेमचंद माने जाते हैं। प्रेमचंद ने साहित्य को केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं माना, बल्कि समाज परिवर्तन का प्रभावी साधन समझा। उन्होंने अपने कथा साहित्य में किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, निम्नवर्ग तथा उपेक्षित समुदायों के जीवन–संघर्ष को केंद्र में रखा। उनके पात्र केवल काल्पनिक नहीं हैं, बल्कि तत्कालीन भारतीय समाज के जीवंत प्रतिनिधि हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों में दलित पात्र पहली बार मानवीय संवेदनाओं, संघर्षों तथा सामाजिक यथार्थ के साथ सामने आते हैं। सद्गति में दुखी चमार की त्रासदी, ठाकुर का कुआँ में जल जैसे मूल अधिकार से वंचित दलित जीवन, दूध का दाम में श्रम के अवमूल्यन की समस्या तथा मंदिर में धार्मिक भेदभाव का चित्रण सामाजिक न्याय की आवश्यकता को स्पष्ट करता है। वहीं गोदान, कर्मभूमि तथा रंगभूमि जैसे उपन्यास सामाजिक संरचना, वर्ग एवं जाति संबंधों तथा शोषण की जटिलताओं का व्यापक चित्र प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि आधुनिक दलित साहित्य आत्मानुभूति, प्रतिरोध और अस्मिता के प्रश्नों को अधिक मुखरता से प्रस्तुत करता है, तथापि प्रेमचंद ने अपने समय की सीमाओं के भीतर रहकर दलित जीवन को साहित्यिक विमर्श का महत्वपूर्ण विषय बनाया। उनका साहित्य भारतीय लोकतांत्रिक मूल्योंकृसमानता, न्याय, बंधुत्व और मानवीय गरिमा की स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक हस्तक्षेप सिद्ध होता है। आज जब भारतीय संविधान सामाजिक न्याय को राज्य का मूल लक्ष्य मानता है तथा समावेशी समाज के निर्माण पर बल देता है, तब प्रेमचंद का साहित्य नए संदर्भों में पुनर्पाठ की अपेक्षा करता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी आवश्यकता की पूर्ति का प्रयास है।

2. अध्ययन की पृष्ठभूमि – बीसवीं शताब्दी का प्रारंभिक भारत सामाजिक संक्रमण का काल था। एक ओर औपनिवेशिक शासन, आर्थिक शोषण तथा ग्रामीण निर्धनता थी, तो दूसरी ओर जातिगत असमानता और सामाजिक रूढ़ियाँ समाज को विभाजित कर रही थीं। अस्पृश्यता केवल सामाजिक व्यवहार तक सीमित नहीं थी, बल्कि शिक्षा, धार्मिक स्थलों, जलस्रोतों, रोजगार तथा सार्वजनिक जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देती थी। इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद का साहित्य विकसित हुआ। उन्होंने साहित्य को समाज का दर्पण मानते हुए उपेक्षित वर्गों की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी। यद्यपि उस समय दलित विमर्श एक स्वतंत्र साहित्यिक आंदोलन के रूप में विकसित नहीं हुआ था, फिर भी प्रेमचंद ने दलित पात्रों को कथा के केंद्र में स्थापित कर सामाजिक यथार्थ की नई

दिशा प्रस्तुत की। प्रेमचंद की रचनाओं में दलित पात्र केवल सहानुभूति के पात्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक व्यवस्था की अमानवीयता को उजागर करने वाले सशक्त प्रतीक हैं। उनका साहित्य जाति–आधारित शोषण, आर्थिक विषमता, श्रम की उपेक्षा, धार्मिक भेदभाव तथा सामाजिक बहिष्करण की गहन पड़ताल करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान ने सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व को मूल संवैधानिक मूल्य के रूप में स्वीकार किया। इसके बावजूद जातिगत भेदभाव और सामाजिक विषमताएँ आज भी अनेक रूपों में विद्यमान हैं। ऐसे में प्रेमचंद का साहित्य केवल ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक विमर्श का भी महत्वपूर्ण आधार बन जाता है। दलित साहित्य के विकास के बाद प्रेमचंद के साहित्य पर अनेक प्रश्न भी उठे हैं। कुछ आलोचकों ने उन्हें दलित चेतना का अग्रदूत माना, जबकि कुछ विद्वानों ने उनके दृष्टिकोण को सवर्ण सुधारवादी चेतना तक सीमित बताया। इस मतभेद के कारण प्रेमचंद के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन और अधिक आवश्यक हो गया है। प्रस्तुत अध्ययन इसी पृष्ठभूमि में दलित चेतना और सामाजिक न्याय की अवधारणा का संतुलित एवं आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करेगा।

3. समस्या का प्रतिपादन– प्रेमचंद का कथा साहित्य सामाजिक यथार्थ का महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाता है। उन्होंने भारतीय समाज के दलित, गरीब, किसान एवं श्रमिक वर्ग की समस्याओं को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया। इसके बावजूद समकालीन दलित विमर्श में यह प्रश्न निरंतर उठता रहा है कि क्या प्रेमचंद का साहित्य वास्तविक अर्थों में दलित चेतना का प्रतिनिधित्व करता है अथवा वह केवल सहानुभूतिपरक सुधारवादी दृष्टिकोण तक सीमित है। दूसरी ओर, भारतीय संविधान सामाजिक न्याय, समान अवसर, गरिमा तथा समान नागरिक अधिकारों को लोकतांत्रिक व्यवस्था का आधार मानता है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि प्रेमचंद के कथा साहित्य का अध्ययन आधुनिक सामाजिक न्याय की अवधारणाओं तथा दलित विमर्श के संदर्भ में पुनः किया जाए।

समस्या का मूल प्रश्न यह है कि प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित पात्रों की प्रस्तुति किस प्रकार सामाजिक अन्याय, जातिगत शोषण, आर्थिक विषमता एवं मानवीय गरिमा के प्रश्नों को सामने लाती है तथा यह प्रस्तुति आधुनिक दलित विमर्श और सामाजिक न्याय की अवधारणा से किस सीमा तक सामंजस्य स्थापित करती है।

4. अध्ययन के उद्देश्य – इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित चेतना के स्वरूप का विश्लेषण करना।
2. प्रेमचंद की कहानियों एवं उपन्यासों में सामाजिक न्याय की अवधारणा का अध्ययन करना।
3. जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता एवं सामाजिक विषमता के चित्रण का मूल्यांकन करना।
4. दलित पात्रों के चरित्र–चित्रण एवं संघर्ष चेतना का विश्लेषण करना।
5. प्रेमचंद के साहित्य में मानवाधिकार एवं समानता संबंधी विचारों का अध्ययन करना।
6. आधुनिक दलित विमर्श के संदर्भ में प्रेमचंद की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।
7. सामाजिक परिवर्तन एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में प्रेमचंद के साहित्य की उपयोगिता का विश्लेषण करना।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

8. समकालीन सामाजिक न्याय के विमर्श में प्रेमचंद के योगदान का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना।

5. शोध प्रश्न–

1. प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित चेतना का स्वरूप क्या है?
2. सामाजिक न्याय की अवधारणा उनके साहित्य में किस प्रकार अभिव्यक्त होती है?
3. दलित पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने जातिगत शोषण को किस रूप में चित्रित किया है?
4. क्या प्रेमचंद का दृष्टिकोण आधुनिक दलित विमर्श के अनुरूप माना जा सकता है?
5. प्रेमचंद का साहित्य समकालीन सामाजिक समानता एवं मानवाधिकार विमर्श में कितना प्रासंगिक है?
6. क्या प्रेमचंद की रचनाएँ सामाजिक परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करने में सफल रही हैं?

6. परिकल्पनाएँ –

1. प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित चेतना का सशक्त एवं यथार्थपरक चित्रण मिलता है।
2. प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक न्याय, समानता तथा मानवीय गरिमा के मूल्यों को प्रोत्साहित करता है।
3. प्रेमचंद ने जातिगत शोषण एवं सामाजिक असमानता के विरुद्ध साहित्यिक प्रतिरोध प्रस्तुत किया है।
4. आधुनिक दलित विमर्श की कुछ सीमाओं के बावजूद प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक न्याय की स्थापना में आज भी प्रासंगिक है।
5. प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित चेतना एवं सामाजिक न्याय का चित्रण समकालीन दलित विमर्श की दृष्टि से प्रभावशाली नहीं है।

7. शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध गुणात्मक, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा व्याख्यात्मक प्रकृति का है। इसका उद्देश्य मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में निहित दलित चेतना तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा का समालोचनात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन का आधार साहित्यिक एवं सामाजिक अनुसंधान की गुणात्मक पद्धति है, जिसमें पाठ को उसके ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा वैचारिक संदर्भों में विश्लेषित किया गया है। शोध का केंद्रबिंदु प्रेमचंद की चयनित कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से दलित जीवन, जातिगत विषमता, सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण, मानवाधिकार तथा सामाजिक न्याय के विविध आयामों की पहचान और उनका समग्र मूल्यांकन करना है। इस अध्ययन में दस्तावेजीय अनुसंधान तथा पुस्तकालयीय अनुसंधान पद्धति का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में मुंशी प्रेमचंद की मूल कृतियों 'सद्‌गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम', 'मंदिर', 'कफन', 'गोदान', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि' तथा 'मानसरोवर' के विभिन्न खंडों का अध्ययन किया गया। इन कृतियों में वर्णित पात्रों, घटनाओं, संवादों, सामाजिक परिस्थितियों तथा वैचारिक अभिव्यक्तियों का गहन विश्लेषण किया गया। द्वितीयक स्रोतों के रूप में प्रेमचंद पर लिखे गए आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध–पत्र, शोध–प्रबंध, संपादित पुस्तकें, विश्वविद्यालयीय प्रकाशन, प्रतिष्ठित

©IJARMS JOURNAL, 2018
WWW.IJARMS.ORG

पत्र–पत्रिकाएँ, सामाजिक न्याय एवं दलित विमर्श से संबंधित साहित्य तथा संवैधानिक एवं मानवाधिकार संबंधी दस्तावेजों का उपयोग किया गया। अनुसंधान में विषयवस्तु विश्लेषण को प्रमुख विश्लेषणात्मक तकनीक के रूप में अपनाया गया। इस पद्धति के अंतर्गत चयनित कृतियों का व्यवस्थित अध्ययन करते हुए उनमें उपस्थित प्रमुख विषयों, प्रतीकों, पात्रों, संवादों एवं घटनाओं का वर्गीकरण किया गया। विश्लेषण के लिए कुछ प्रमुख संकेतक निर्धारित किए गए, जिनमें जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण, श्रम की गरिमा, धार्मिक समानता, मानवाधिकार, सामाजिक समानता, प्रतिरोध, सामाजिक परिवर्तन, लोकतांत्रिक मूल्य तथा मानवीय गरिमा प्रमुख रहे। प्रत्येक कृति का मूल्यांकन इन संकेतकों के आधार पर किया गया, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि प्रेमचंद ने दलित चेतना और सामाजिक न्याय की अवधारणा को किस प्रकार अभिव्यक्त किया है। शोध में तुलनात्मक विश्लेषण का भी उपयोग किया गया। इस प्रक्रिया में प्रेमचंद की विभिन्न कहानियों एवं उपन्यासों में दलित पात्रों के चित्रण की तुलना की गई तथा उनके दृष्टिकोण का आधुनिक दलित विमर्श, सामाजिक न्याय की संवैधानिक अवधारणा तथा मानवाधिकार के सिद्धांतों के साथ समन्वित अध्ययन किया गया। साथ ही, प्रेमचंद के साहित्य की तुलना आधुनिक दलित चिंतकोंकृविशेषकर डॉ. भीमराव आंबेडकर, ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाले तथा कंवल भारती द्वारा प्रतिपादित विचारों के आलोक में भी की गई, ताकि उनके साहित्य की समकालीन प्रासंगिकता का समुचित मूल्यांकन किया जा सके।

शोध में ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण को भी अपनाया गया। प्रेमचंद के साहित्य को उनके समय की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया। औपनिवेशिक शासन, जाति–व्यवस्था, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, सामाजिक सुधार आंदोलनों, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन तथा तत्कालीन सामाजिक संरचना को अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार किया गया। इससे यह स्पष्ट करने में सहायता मिली कि प्रेमचंद का साहित्य अपने समय की सामाजिक चुनौतियों का किस प्रकार प्रतिनिधित्व करता है तथा आज के लोकतांत्रिक और संवैधानिक भारत में उसकी क्या प्रासंगिकता है। अनुसंधान में सामाजिक न्याय की अवधारणा को भारतीय संविधान के मूल सिद्धांतों के आलोक में भी समझा गया। समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, गरिमामय जीवन, अवसर की समानता तथा अस्पृश्यता उन्मूलन जैसे संवैधानिक मूल्यों को विश्लेषण का वैचारिक आधार बनाया गया। साथ ही, संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा–पत्र (Universal Declaration of Human Rights, 1948), सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals—SDG) तथा समावेशी विकास (Inclusive Development) जैसे समकालीन वैश्विक मानकों को भी अध्ययन के संदर्भ बिंदु के रूप में सम्मिलित किया गया। अध्ययन के दौरान प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण पूर्णतः गुणात्मक पद्धति से किया गया। किसी प्रकार के सांख्यिकीय सर्वेक्षण या क्षेत्रीय अध्ययन का उपयोग नहीं किया गया, क्योंकि यह शोध साहित्य–आधारित विश्लेषणात्मक अध्ययन है। तथ्यों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का परस्पर सत्यापन किया गया तथा केवल प्रमाणिक और प्रतिष्ठित अकादमिक स्रोतों को ही संदर्भ के रूप में स्वीकार किया गया। यह अध्ययन मुख्यतः प्रेमचंद के चयनित कथा साहित्य तक सीमित है। आधुनिक दलित साहित्य के

©IJARMS JOURNAL, 2018

सभी लेखकों अथवा समस्त हिंदी कथा साहित्य का विश्लेषण इस शोध के अंतर्गत नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त अध्ययन का उद्देश्य साहित्यिक कृतियों के माध्यम से सामाजिक न्याय एवं दलित चेतना का मूल्यांकन करना है; अतः सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक आँकड़ों के प्रत्यक्ष क्षेत्रीय विश्लेषण को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया। फिर भी प्रयुक्त शोध पद्धति, विषयवस्तु विश्लेषण, तुलनात्मक अध्ययन तथा संवैधानिक दृष्टिकोण के समन्वय के कारण यह अध्ययन दलित चेतना और सामाजिक न्याय के संदर्भ में प्रेमचंद के कथा साहित्य का एक समग्र, वस्तुनिष्ठ तथा अकादमिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

2 साहित्य समीक्षा – किसी भी शोध का आधार पूर्ववर्ती ज्ञान एवं उपलब्ध साहित्य का सम्यक् अध्ययन होता है। साहित्य समीक्षा का उद्देश्य केवल पूर्व में किए गए अध्ययनों का विवरण प्रस्तुत करना नहीं होता, बल्कि उनके निष्कर्षों, दृष्टिकोणों, शोध प्रविधियों तथा सीमाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करना भी होता है। इससे शोधकर्ता यह स्पष्ट कर पाता है कि संबंधित विषय पर अब तक क्या कार्य हुआ है, किन पक्षों पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है तथा किन क्षेत्रों में अभी भी शोध की आवश्यकता बनी हुई है। प्रेमचंद हिंदी साहित्य के ऐसे रचनाकार हैं जिन पर सर्वाधिक शोध कार्य हुआ है। उनके साहित्य को सामाजिक यथार्थवाद, ग्रामीण जीवन, किसान समस्या, राष्ट्रीय चेतना, स्त्री विमर्श, वर्ग संघर्ष, आर्थिक विषमता, गांधीवादी विचारधारा तथा मानवतावाद जैसे विविध दृष्टिकोणों से अध्ययन किया गया है। किंतु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दलित साहित्य के एक स्वतंत्र साहित्यिक आंदोलन के रूप में विकसित होने के बाद प्रेमचंद के साहित्य का पुनर्पाठ प्रारम्भ हुआ। इस पुनर्पाठ ने यह प्रश्न उठाया कि क्या प्रेमचंद को दलित चेतना का प्रारम्भिक प्रतिनिधि माना जा सकता है, अथवा उनका दृष्टिकोण सुधारवादी सहानुभूति तक सीमित है।

समकालीन शोधों में प्रेमचंद की कहानियों विशेषतः सद्गति, ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम, मंदिर तथा कफन को दलित जीवन की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों के प्रतिनिधि दस्तावेज के रूप में देखा गया है। वहीं गोदान, रंगभूमि और कर्मभूमि जैसे उपन्यासों में सामाजिक न्याय, वर्गीय शोषण तथा जातिगत असमानताओं का व्यापक चित्रण भी अनेक शोधों का विषय रहा है। इस साहित्य समीक्षा का उद्देश्य निम्नलिखित बिंदुओं को स्पष्ट करना है–

1. प्रेमचंद पर उपलब्ध प्रमुख आलोचनात्मक साहित्य का विश्लेषण।
2. दलित चेतना एवं सामाजिक न्याय के संदर्भ में हुए प्रमुख अध्ययनों का मूल्यांकन।
3. विभिन्न विद्वानों के मतों का तुलनात्मक अध्ययन।
4. पूर्ववर्ती शोधों की सीमाओं एवं शोध–अंतराल की पहचान।
5. वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एवं नवीनता को स्थापित करना।

2.2 प्रेमचंद पर प्रारम्भिक आलोचनात्मक अध्ययन– प्रेमचंद के साहित्य का व्यवस्थित आलोचनात्मक अध्ययन स्वतंत्रता–पूर्व काल से ही प्रारम्भ हो गया था। प्रारम्भिक आलोचकों ने उन्हें मुख्यतः यथार्थवादी, आदर्शवादी तथा समाज–सुधारक साहित्यकार के रूप में देखा। उस समय दलित विमर्श

एक स्वतंत्र आलोचनात्मक प्रतिमान के रूप में विकसित नहीं हुआ था; अतः उनके साहित्य में दलित पात्रों की चर्चा मुख्यतः सामाजिक सुधार और मानवीय संवेदना के संदर्भ में की गई।

(क) रामविलास शर्मा– डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद को भारतीय किसान, श्रमिक तथा निम्नवर्गीय समाज का सबसे बड़ा कथाकार माना। उनके अनुसार प्रेमचंद का साहित्य भारतीय समाज की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। शर्मा का मत है कि प्रेमचंद ने साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया तथा शोषित वर्ग की समस्याओं को राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया। यद्यपि रामविलास शर्मा ने दलित साहित्य की आधुनिक अवधारणा का प्रतिपादन नहीं किया, तथापि उन्होंने यह स्पष्ट किया कि प्रेमचंद के साहित्य का केंद्र समाज का वह वर्ग है जो आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से सबसे अधिक वंचित है।

(ख) नामवर सिंह– नामवर सिंह ने प्रेमचंद के साहित्य को भारतीय यथार्थवाद का सर्वोच्च उदाहरण माना। उनके अनुसार प्रेमचंद का साहित्य किसी एक वर्ग का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज का प्रतिनिधि साहित्य है। वे मानते हैं कि प्रेमचंद के पात्र वर्ग, जाति, धर्म और आर्थिक परिस्थितियों के यथार्थ प्रतिनिधि हैं। नामवर सिंह का मत है कि प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध नैतिक प्रतिरोध प्रस्तुत करता है। उन्होंने विशेष रूप से सद्गति और ठाकुर का कुआँ जैसी कहानियों को सामाजिक असमानता के सशक्त दस्तावेज माना।

(ग) अमृत राय– प्रेमचंद के पुत्र अमृत राय ने अपनी प्रसिद्ध कृति कलम का सिपाही में प्रेमचंद के जीवन और साहित्यिक विकास का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्रेमचंद का साहित्य व्यक्तिगत अनुभवों, सामाजिक अवलोकन तथा राष्ट्रीय चेतना का परिणाम है। अमृत राय के अनुसार प्रेमचंद का उद्देश्य किसी वर्ग विशेष का महिमामंडन नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज में मानवीय समानता स्थापित करना था।

(घ) नंददुलारे वाजपेयी– वाजपेयी ने प्रेमचंद के साहित्य में मानवतावाद को केंद्रीय तत्व माना। उनके अनुसार प्रेमचंद जातिगत विभाजन से ऊपर उठकर मनुष्य की गरिमा को सर्वोच्च स्थान देते हैं। यही कारण है कि उनके दलित पात्र केवल सामाजिक करुणा के प्रतीक नहीं, बल्कि मानवीय सम्मान की आकांक्षा रखने वाले जीवंत चरित्र हैं।

2.3 प्रेमचंद और सामाजिक यथार्थ– प्रेमचंद को हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने साहित्य को काल्पनिक आदर्शवाद से निकालकर वास्तविक जीवन की समस्याओं से जोड़ा। उनके कथा साहित्य में समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व मिलता है, किंतु विशेष रूप से दलित, किसान, मजदूर, स्त्री तथा निम्न मध्यम वर्ग के जीवन का अत्यंत सजीव चित्रण मिलता है।

(क) सामाजिक यथार्थ की अवधारणा– सामाजिक यथार्थ से आशय समाज की वास्तविक परिस्थितियोंकृगरीबी, शोषण, जातिगत भेदभाव, वर्गीय संघर्ष, लैंगिक असमानता तथा सांस्कृतिक विषमताकृके सत्य एवं वस्तुनिष्ठ चित्रण से है। प्रेमचंद ने इन सभी आयामों को अपने साहित्य में स्थान दिया। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि प्रेमचंद का साहित्य भारतीय समाज के अंतर्विरोधों

का जीवंत दस्तावेज है। उन्होंने साहित्य को केवल सौंदर्यबोध तक सीमित न रखकर सामाजिक परिवर्तन का उपकरण बनाया।

(ख) जाति और वर्ग का संबंध– अनेक विद्वानों ने इस बात पर बल दिया है कि प्रेमचंद के साहित्य में जाति और वर्ग दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। दलित पात्र केवल जातिगत उत्पीड़न ही नहीं, बल्कि आर्थिक शोषण का भी सामना करते हैं। उदाहरणस्वरूप– सद्गति में दुखी चमार सामाजिक तथा आर्थिक दोनों स्तरों पर शोषित है। ठाकुर का कुआँ में गंगी को केवल पानी भरने से रोका नहीं जाता, बल्कि उसे सामाजिक रूप से अपमानित भी किया जाता है। गोदान में जाति और वर्ग दोनों मिलकर ग्रामीण समाज की संरचना निर्धारित करते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ बहुआयामी है।

(ग) सामाजिक परिवर्तन की चेतना– डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का मत है कि प्रेमचंद केवल यथार्थ का चित्रण नहीं करते, बल्कि परिवर्तन की आवश्यकता भी व्यक्त करते हैं। उनके साहित्य में अन्याय के प्रति मौन स्वीकृति नहीं, बल्कि नैतिक प्रतिरोध का स्वर उपस्थित है। यही तत्व उन्हें सामाजिक न्याय के विचारकों के निकट लाता है।

2.4 प्रेमचंद के साहित्य में दलित चेतना पर प्रमुख अध्ययन– दलित साहित्य के विकास के बाद प्रेमचंद के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन आरम्भ हुआ। इस विषय पर विद्वानों के मत मुख्यतः दो धाराओं में विभाजित दिखाई देते हैं।

(क) प्रेमचंद को दलित चेतना का अग्रदूत मानने वाले विद्वान– कई साहित्यकारों एवं आलोचकों का मत है कि प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य में पहली बार दलित पात्रों को कथा के केंद्र में स्थापित किया। उनके अनुसार– प्रेमचंद ने अस्पृश्यता का खुला विरोध किया। उन्होंने दलित जीवन की पीड़ा को मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया। उनकी कहानियाँ सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर बल देती हैं। उन्होंने जातिगत अन्याय को नैतिक रूप से अस्वीकार्य बताया। इन विद्वानों के अनुसार प्रेमचंद आधुनिक दलित साहित्य के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि भले न हों, किंतु उन्होंने उसके लिए वैचारिक आधार तैयार किया।

(ख) आलोचनात्मक दृष्टिकोण– दूसरी ओर कुछ दलित चिंतकों ने प्रेमचंद की सीमाओं की ओर भी संकेत किया है। उनके अनुसार– प्रेमचंद का दृष्टिकोण मुख्यतः सुधारवादी है। दलित पात्रों की आवाज़ कई स्थानों पर प्रत्यक्ष न होकर लेखक के माध्यम से व्यक्त होती है। प्रतिरोध की अपेक्षा करुणा का भाव अधिक दिखाई देता है। दलित अस्मिता की वैचारिक अभिव्यक्ति आधुनिक दलित साहित्य की तुलना में अपेक्षाकृत सीमित है। यह आलोचना विशेष रूप से उत्तर–आंबेडकरवादी दलित विमर्श में दिखाई देती है।

(ग) संतुलित दृष्टिकोण– समकालीन शोधों में अधिकांश विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि प्रेमचंद का मूल्यांकन उनके ऐतिहासिक संदर्भ में किया जाना चाहिए। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में जिस साहस के साथ उन्होंने दलित जीवन को साहित्य का विषय बनाया, वह अपने समय की दृष्टि से अत्यंत प्रगतिशील कदम था। इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रेमचंद आधुनिक दलित विमर्श के

सभी मानदंडों पर भले ही पूर्णतः खरे न उतरें, परंतु सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के पक्षधर साहित्यकार के रूप में उनका योगदान निर्विवाद है।

2.5 सामाजिक न्याय एवं मानवाधिकार के संदर्भ में प्रेमचंद–असामाजिक न्याय भारतीय लोकतंत्र की आधारभूत अवधारणा है। भारतीय संविधान समानता, स्वतंत्रता, गरिमा तथा अवसर की समानता को प्रत्येक नागरिक का अधिकार मानता है। अनेक विद्वानों ने प्रेमचंद के साहित्य को इन संवैधानिक मूल्यों के पूर्वगामी साहित्यिक स्वर के रूप में देखा है।

(क) मानव गरिमा की स्थापना– प्रेमचंद के साहित्य में दलित पात्र केवल दया के पात्र नहीं हैं; वे सम्मानपूर्वक जीवन जीने की आकांक्षा रखते हैं। ठाकुर का कुआँ की गंगी, सद्गति का दुखी तथा दूध का दाम के पात्र मानव गरिमा के अधिकार का प्रतीक बनकर उभरते हैं।

(ख) समान अवसर की अवधारणा– प्रेमचंद सामाजिक संसाधनों पर समान अधिकार की वकालत करते हैं। जल, शिक्षा, श्रम, धर्म और सम्मान को वे किसी जाति विशेष की संपत्ति नहीं मानते। यह दृष्टिकोण आधुनिक सामाजिक न्याय की अवधारणा से निकटता रखता है।

(ग) सामाजिक नैतिकता– प्रेमचंद का साहित्य यह स्थापित करता है कि किसी भी समाज की नैतिकता का मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह अपने सबसे कमजोर नागरिक के साथ कैसा व्यवहार करता है। इस दृष्टि से उनका साहित्य आज भी मानवाधिकार विमर्श में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के कथा साहित्य का मूल्यांकन विभिन्न वैचारिक दृष्टिकोणों से किया गया है। प्रारम्भिक आलोचना ने उन्हें यथार्थवादी एवं मानवतावादी साहित्यकार माना, जबकि आधुनिक दलित विमर्श ने उनके साहित्य की नई व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। एक ओर उन्हें दलित चेतना का प्रारम्भिक प्रवक्ता माना गया, तो दूसरी ओर उनके सुधारवादी दृष्टिकोण की आलोचना भी हुई। तथापि अधिकांश विद्वानों में इस बात पर व्यापक सहमति है कि प्रेमचंद ने जातिगत अन्याय, सामाजिक विषमता और मानवीय गरिमा के प्रश्नों को हिंदी कथा साहित्य के केंद्र में स्थापित किया। यही तथ्य उनके साहित्य को सामाजिक न्याय के विमर्श में आज भी प्रासंगिक बनाता है।

2.6 समकालीन दलित विमर्श और प्रेमचंद– बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी साहित्य में दलित विमर्श एक स्वतंत्र वैचारिक एवं साहित्यिक आंदोलन के रूप में स्थापित हुआ। इस आंदोलन ने साहित्य के केंद्र में दलित अनुभव, अस्मिता, आत्मसम्मान, सामाजिक न्याय तथा प्रतिरोध को रखा। दलित साहित्य के विकास के साथ ही पूर्ववर्ती साहित्यकारों, विशेषकर प्रेमचंद, के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन प्रारम्भ हुआ। यह पुनर्पाठ केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि वैचारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा। दलित साहित्य का मूल सिद्धांत यह है कि दलित जीवन की वास्तविक अनुभूति वही लेखक प्रभावी रूप से अभिव्यक्त कर सकता है जिसने स्वयं उस सामाजिक यथार्थ को जिया हो। इस आधार पर कुछ दलित आलोचकों ने प्रेमचंद के साहित्य की आलोचना की कि वे दलित समाज के बाहरी पर्यवेक्षक हैं, अतः उनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपरक है, स्वानुभूतिपरक नहीं।

(क) ओमप्रकाश वाल्मीकि का दृष्टिकोण– ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का साहित्य माना। उनके अनुसार दलित साहित्य केवल करुणा का साहित्य नहीं है, बल्कि संघर्ष, प्रतिरोध, अस्मिता और अधिकारों की स्थापना का साहित्य है। उन्होंने प्रेमचंद की कुछ रचनाओं की सराहना करते हुए यह भी संकेत किया कि आधुनिक दलित चेतना की तुलना में उनमें प्रतिरोध का स्वर अपेक्षाकृत सीमित है। वाल्मीकि का मत है कि प्रेमचंद ने दलित जीवन की पीड़ा को ईमानदारी से प्रस्तुत किया, परंतु समाधान प्रायः नैतिक परिवर्तन या सुधारवादी दृष्टिकोण में खोजा, जबकि आधुनिक दलित साहित्य सामाजिक संरचना में मूलभूत परिवर्तन की अपेक्षा करता है।

(ख) शरणकुमार लिंबाले का दृष्टिकोण– शरणकुमार लिंबाले ने दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र की स्थापना करते हुए अनुभव की प्रामाणिकता पर बल दिया। उनके अनुसार दलित साहित्य का मूल्यांकन पारंपरिक साहित्यिक मानकों से नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में प्रेमचंद का साहित्य दलित अनुभव का प्रारंभिक दस्तावेज अवश्य है, परंतु वह दलित साहित्य की समकालीन वैचारिक परिभाषा का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करता।

(ग) कंवल भारती का दृष्टिकोण– कंवल भारती ने प्रेमचंद के साहित्य को सामाजिक न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार प्रेमचंद ने पहली बार हिंदी कथा साहित्य में दलित पात्रों को मानवीय गरिमा प्रदान की। यद्यपि वे आंबेडकरवादी राजनीतिक दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध नहीं थे, फिर भी उनका साहित्य जातिगत अन्याय का स्पष्ट विरोध करता है।

(घ) धर्मवीर का दृष्टिकोण– धर्मवीर जैसे आलोचकों ने प्रेमचंद की कुछ रचनाओं पर प्रश्न उठाए और यह तर्क दिया कि उनमें दलित पात्रों की सक्रिय भूमिका सीमित है। उनके अनुसार दलित पात्रों को सामाजिक परिवर्तन का नेतृत्वकर्ता न बनाकर पीड़ित के रूप में अधिक प्रस्तुत किया गया है।

(ङ) समकालीन निष्कर्ष– समकालीन दलित विमर्श में प्रेमचंद के संबंध में दो परस्पर विरोधी धाराएँ दिखाई देती हैं, जहां पहली धारा उन्हें दलित चेतना का प्रारंभिक संवाहक मानती है। तो दूसरी धारा उन्हें सुधारवादी साहित्यकार मानती है, जिनकी दृष्टि आधुनिक दलित विमर्श की अपेक्षाओं से सीमित है। इन दोनों के बीच संतुलित मत यह स्वीकार करता है कि प्रेमचंद का मूल्यांकन उनके समय, सामाजिक परिस्थितियों तथा ऐतिहासिक संदर्भ में किया जाना चाहिए।

2.7 राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोधों का तुलनात्मक विश्लेषण– प्रेमचंद के साहित्य पर भारत सहित अनेक देशों में शोध कार्य हुए हैं। हिंदी, उर्दू तथा तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। भारतीय विश्वविद्यालयों में प्रेमचंद पर किए गए अधिकांश शोध निम्न विषयों पर केंद्रित रहे हैं– सामाजिक यथार्थ, ग्रामीण जीवन, किसान समस्या, गांधीवादी विचारधारा, स्त्री विमर्श, दलित चेतना, वर्ग संघर्ष, मानवतावाद, राष्ट्रीय चेतना। हाल के वर्षों में सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, समावेशी समाज तथा संविधान के संदर्भ में भी प्रेमचंद के साहित्य का अध्ययन बढ़ा है। प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करता है। दलित पात्रों का चित्रण अपने समय की दृष्टि से अत्यंत प्रगतिशील है। जाति एवं वर्ग दोनों का अंतर्संबंध

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

उनके साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। साहित्य के माध्यम से सामाजिक न्याय की अवधारणा को सुदृढ़ किया गया है।

भारत के अतिरिक्त अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, फ्रांस तथा अन्य देशों के दक्षिण एशियाई अध्ययन केंद्रों में भी प्रेमचंद पर अनेक शोध हुए हैं। इन अध्ययनों में निम्न प्रमुख विषयों पर विशेष ध्यान दिया गया है– औपनिवेशिक भारत का सामाजिक इतिहास, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, उपनिवेशवाद एवं साहित्य, जाति व्यवस्था, सामाजिक यथार्थवाद, उत्तर–औपनिवेशिक अध्ययन, सबाल्टर्न अध्ययन, अंतरराष्ट्रीय विद्वान प्रेमचंद को केवल हिंदी साहित्यकार नहीं, बल्कि औपनिवेशिक भारत के सामाजिक इतिहास के महत्वपूर्ण दस्तावेजकार के रूप में भी देखते हैं।

तुलनात्मक विश्लेषण

क्र0सं0	आधार	भारतीय शोध	अंतरराष्ट्रीय शोध
1	प्रमुख दृष्टिकोण	सामाजिक सुधार एवं यथार्थ	उपनिवेशवाद एवं समाज
2	दलित विमर्श	विस्तृत	सीमित
3	सामाजिक न्याय	व्यापक	मानवाधिकार एवं समानता के संदर्भ में
4	अध्ययन पद्धति	साहित्यिक एवं सामाजिक	अंतर्विषयी
5	प्रमुख फोकस	भारतीय समाज	औपनिवेशिक संरचना एवं सामाजिक परिवर्तन

इस तुलना से स्पष्ट होता है कि भारतीय शोधों में दलित चेतना पर अपेक्षाकृत अधिक कार्य हुआ है, जबकि अंतरराष्ट्रीय शोध सामाजिक संरचना, औपनिवेशिक सत्ता तथा मानवाधिकार के संदर्भ में प्रेमचंद को देखते हैं।

2.8 शोध–अंतराल – यद्यपि प्रेमचंद के साहित्य पर व्यापक शोध उपलब्ध है, तथापि निम्न क्षेत्रों में अभी भी पर्याप्त अध्ययन अपेक्षित है। अधिकांश शोध साहित्यिक आलोचना तक सीमित हैं। भारतीय संविधान के सामाजिक न्याय संबंधी सिद्धांतों के आलोक में प्रेमचंद के साहित्य का समग्र अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। दलित चेतना एवं आधुनिक मानवाधिकार विमर्श को एकीकृत कर प्रेमचंद के साहित्य का विश्लेषण अभी भी सीमित है। राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, मानवाधिकार अध्ययन तथा विधि के दृष्टिकोण से प्रेमचंद के साहित्य का समेकित अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है।

प्रेमचंद की तुलना आधुनिक दलित साहित्यकारों ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, शरणकुमार लिंबाले, तुलसीराम आदि से व्यवस्थित रूप में कम की गई है। नई शिक्षा नीति, सामाजिक समावेशन, सतत विकास लक्ष्य, सामाजिक समानता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में प्रेमचंद की प्रासंगिकता पर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

2.9 वैचारिक रूपरेखा – यह अध्ययन निम्न प्रमुख वैचारिक आधारों पर निर्मित है–

(क) सामाजिक न्याय का सिद्धांत– सामाजिक न्याय का तात्पर्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, सम्मान तथा संसाधनों तक समान पहुँच उपलब्ध कराना है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 17, 21, 38 तथा 46 इस अवधारणा को संस्थागत आधार प्रदान करते हैं।

(ख) दलित चेतना– दलित चेतना केवल सामाजिक पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समानता, आत्मसम्मान, अधिकार, सामाजिक परिवर्तन तथा अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना है।

(ग) सामाजिक यथार्थवाद– प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक यथार्थवाद पर आधारित है। उन्होंने आदर्शवाद के स्थान पर वास्तविक जीवन की समस्याओं को साहित्य का विषय बनाया।

(घ) मानवतावाद– प्रेमचंद का साहित्य मनुष्य की गरिमा को सर्वोच्च मूल्य मानता है। जाति, धर्म, वर्ग एवं लिंग से ऊपर उठकर प्रत्येक व्यक्ति के सम्मान की स्थापना उनके साहित्य का मूल उद्देश्य है।

(ङ) विषयवस्तु विश्लेषण मॉडल– प्रस्तुत अध्ययन में जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण, शिक्षा एवं अवसर, धार्मिक असमानता, श्रम एवं सम्मान, प्रतिरोध, सामाजिक परिवर्तन, न्याय, मानवाधिकार संकेतकों के आधार पर कथाओं का विश्लेषण किया जाएगा।

समीक्षित साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के कथा साहित्य का अध्ययन अनेक दृष्टियों से किया गया है, किंतु दलित चेतना और सामाजिक न्याय के संयुक्त परिप्रेक्ष्य में अभी भी व्यापक एवं समेकित विश्लेषण की आवश्यकता बनी हुई है। पूर्ववर्ती अध्ययनों से निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं– प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद की सशक्त परंपरा स्थापित की। उनके साहित्य में दलित पात्र पहली बार व्यापक सामाजिक संदर्भों में प्रमुखता से उभरते हैं। आधुनिक दलित विमर्श ने प्रेमचंद के साहित्य की नई व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं, जिनमें समर्थन और आलोचना दोनों दृष्टियाँ सम्मिलित हैं। सामाजिक न्याय, समानता एवं मानवीय गरिमा उनके साहित्य के मूल मूल्य हैं। समकालीन भारतीय समाज में जातिगत असमानताओं की निरंतरता प्रेमचंद के साहित्य को आज भी प्रासंगिक बनाती है। उपलब्ध शोधों में संवैधानिक सामाजिक न्याय, मानवाधिकार तथा अंतर्विषयी विश्लेषण पर अपेक्षाकृत कम कार्य हुआ है, जिसे प्रस्तुत अध्ययन पूरा करने का प्रयास करेगा। इस प्रकार साहित्य समीक्षा यह स्थापित करती है कि प्रेमचंद का कथा साहित्य केवल साहित्यिक उपलब्धि नहीं, बल्कि भारतीय समाज में न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के विमर्श का एक महत्वपूर्ण वैचारिक स्रोत भी है। यही तथ्य इस शोध के औचित्य एवं नवीनता को पुष्ट करता है।

3– प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित चेतना का विश्लेषण– प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित चेतना का अध्ययन भारतीय समाज की जाति–आधारित संरचना, सामाजिक असमानता तथा मानवीय गरिमा के प्रश्नों को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। दलित चेतना का तात्पर्य केवल दलित समुदाय की पीड़ा या शोषण का चित्रण नहीं है, बल्कि उनके आत्मसम्मान, सामाजिक अधिकार,

©IJARMS JOURNAL, 2018

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

समान अवसर, न्याय, प्रतिरोध तथा मानवीय गरिमा की स्थापना से भी है। यह चेतना सामाजिक परिवर्तन की उस प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है, जो जाति–आधारित भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध समानता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास करती है। आधुनिक अर्थों में दलित चेतना डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचारों से गहराई से जुड़ी हुई है, किंतु हिंदी साहित्य में इसके प्रारम्भिक स्वर प्रेमचंद के कथा साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में उन वर्गों को स्वर प्रदान किया जिन्हें सदियों तक सामाजिक व्यवस्था के हाशिए पर रखा गया था। उन्होंने दलित पात्रों को केवल करुणा का विषय नहीं बनाया, बल्कि उन्हें सामाजिक यथार्थ के जीवंत प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी दृष्टि में मनुष्य की पहचान उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके श्रम, नैतिकता और मानवीय गरिमा से होती है। यही कारण है कि उनके साहित्य में दलित पात्रों का चित्रण सामाजिक संवेदना और न्याय की भावना से परिपूर्ण दिखाई देता है। प्रेमचंद का साहित्य उस समय लिखा गया जब भारतीय समाज में अस्पृश्यता, जातिगत ऊँच–नीच, धार्मिक रूढ़ियाँ तथा सामाजिक भेदभाव व्यापक रूप से विद्यमान थे। दलित समुदाय को सार्वजनिक कुओं से पानी लेने, मंदिरों में प्रवेश करने, शिक्षा प्राप्त करने तथा सम्मानजनक जीवन जीने के अधिकार से वंचित रखा जाता था। प्रेमचंद ने इन परिस्थितियों का अत्यंत यथार्थ चित्रण करते हुए यह दिखाया कि सामाजिक अन्याय केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय संकट भी है। उनके साहित्य का उद्देश्य किसी जाति विशेष के प्रति घृणा उत्पन्न करना नहीं, बल्कि सामाजिक विवेक को जागृत करना था। प्रेमचंद की कथा–दृष्टि में दलित चेतना का आधार मानवतावाद है। वे मानते हैं कि समाज की प्रगति तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति को समान सम्मान और अवसर प्राप्त हों। उनकी रचनाओं में दलित पात्र किसी दया के पात्र नहीं, बल्कि ऐसे मनुष्य हैं जिनके अधिकारों का निरंतर हनन हुआ है। इस दृष्टि से उनका साहित्य भारतीय संविधान में निहित सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे मूल्यों का पूर्वाभास प्रस्तुत करता है। सद्गति प्रेमचंद की उन प्रतिनिधि कहानियों में है जिसमें जातिगत शोषण का अत्यंत मार्मिक और यथार्थ चित्रण मिलता है। इस कहानी का मुख्य पात्र दुखी चमार है, जो अपनी पुत्री के विवाह का मुहूर्त निकलवाने के लिए गाँव के ब्राह्मण के पास जाता है। ब्राह्मण उसकी विवशता का लाभ उठाकर उससे कठोर श्रम करवाता है, किंतु उसे भोजन, विश्राम अथवा सम्मान कुछ भी नहीं देता। अत्यधिक परिश्रम और उपेक्षा के कारण दुखी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के बाद भी उसकी जाति उसके साथ जुड़ी रहती है; उसका शव उठाने तक में लोग हिचकिचाते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि जातिगत व्यवस्था मनुष्य की मृत्यु के बाद भी उसका पीछा नहीं छोड़ती।

यह कहानी केवल एक व्यक्ति की त्रासदी नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की आलोचना है जिसमें धर्म और जाति के नाम पर श्रम का शोषण तथा मनुष्य की गरिमा का अपमान किया जाता है। ब्राह्मण का चरित्र केवल एक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि उस सामाजिक मानसिकता का प्रतीक है जो जाति के आधार पर मनुष्यों के अधिकार निर्धारित करती है। दुखी चमार का मौन संघर्ष उस समय के दलित समाज की विवशता को दर्शाता है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से

©IJARMS JOURNAL, 2018
WWW.IJARMS.ORG

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

यह स्थापित करते हैं कि किसी भी धार्मिक व्यवस्था का मूल्यांकन उसके नैतिक आचरण के आधार पर होना चाहिए, न कि उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर। ठाकुर का कुआँ में प्रेमचंद ने अस्पृश्यता की समस्या को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका गंगी अपने बीमार पति के लिए स्वच्छ पानी लाना चाहती है, किंतु जातिगत भेदभाव के कारण वह गाँव के सार्वजनिक कुएँ से पानी नहीं भर सकती। उसका अपना कुआँ गंदा है और पीने योग्य नहीं है। यह परिस्थिति उस सामाजिक विडंबना को उजागर करती है जिसमें जीवन के सबसे मूलभूत संसाधन, जल, पर भी जातिगत अधिकार स्थापित कर दिए गए थे।

गंगी का मानसिक संघर्ष कहानी का सबसे सशक्त पक्ष है। वह जानती है कि यदि उसे ठाकुर के कुएँ पर देख लिया गया तो उसे अपमानित किया जाएगा। फिर भी वह अपने पति के जीवन की रक्षा के लिए जोखिम उठाती है। प्रेमचंद इस प्रसंग के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक न्याय केवल कानून बनाने से स्थापित नहीं होता, बल्कि सामाजिक व्यवहार और मानवीय दृष्टिकोण में परिवर्तन से संभव होता है। जल जैसे सार्वभौमिक संसाधन पर जातिगत नियंत्रण सामाजिक अन्याय का प्रतीक बन जाता है। यह कहानी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 17 की भावना का साहित्यिक पूर्वरूप प्रतीत होती है, जो समानता और अस्पृश्यता उन्मूलन की बात करते हैं। दूध का दाम में प्रेमचंद श्रम के सम्मान और आर्थिक शोषण की समस्या को दलित जीवन के संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। कहानी यह संकेत करती है कि समाज दलितों के श्रम का उपयोग तो करता है, किंतु उन्हें उनके श्रम का उचित मूल्य और सम्मान देने के लिए तैयार नहीं होता। आर्थिक शोषण और जातिगत भेदभाव यहाँ परस्पर जुड़े हुए दिखाई देते हैं। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक न्याय का अर्थ केवल सामाजिक सम्मान नहीं, बल्कि आर्थिक समानता और श्रम के उचित प्रतिफल से भी है।

इस कहानी का केंद्रीय संदेश यह है कि श्रम किसी भी समाज की आधारशिला है और श्रमिक की गरिमा उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके श्रम से निर्धारित होनी चाहिए। प्रेमचंद ने श्रम की प्रतिष्ठा को सामाजिक न्याय का अनिवार्य तत्व माना है। यह विचार आधुनिक श्रम–अधिकार तथा सामाजिक समानता की अवधारणाओं से पूर्णतः मेल खाता है। मंदिर कहानी धार्मिक समानता के प्रश्न को उठाती है। भारतीय समाज में लंबे समय तक दलितों को मंदिरों में प्रवेश से वंचित रखा गया। प्रेमचंद ने इस कहानी में धार्मिक आस्था और सामाजिक भेदभाव के बीच विद्यमान विरोधाभास को उजागर किया है। यदि ईश्वर समस्त मानवता का है, तो उसके मंदिर में प्रवेश पर जातिगत प्रतिबंध क्यों होना चाहिए? यह प्रश्न कहानी के केंद्र में है। प्रेमचंद धार्मिक संस्थाओं की आलोचना नहीं करते, बल्कि उनके भीतर व्याप्त सामाजिक अन्याय का विरोध करते हैं। वे यह स्थापित करते हैं कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य मानवता, करुणा और समानता की स्थापना है। यदि धार्मिक व्यवस्था ही मनुष्य के साथ भेदभाव करे तो वह अपने नैतिक उद्देश्य से भटक जाती है। इस प्रकार मंदिर धार्मिक सुधार और सामाजिक न्याय की संयुक्त चेतना को अभिव्यक्त करती है। कफन प्रेमचंद की सबसे चर्चित और विवादास्पद कहानियों में से एक है। घीसू और माधव जैसे पात्रों को लेकर लंबे समय से साहित्यिक बहस चलती रही है। कुछ आलोचक उन्हें दलित समाज की नकारात्मक छवि

मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान उन्हें अत्यधिक गरीबी, सामाजिक बहिष्कार और अमानवीय परिस्थितियों की उपज के रूप में देखते हैं। आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो प्रेमचंद का उद्देश्य किसी जाति विशेष का उपहास करना नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की विफलता को उजागर करना है जिसने मनुष्य को इतना निराश और असंवेदनशील बना दिया कि वह जीवन और मृत्यु दोनों के प्रति उदासीन हो गया।

घीसू और माधव की निष्क्रियता को यदि केवल व्यक्तिगत दोष माना जाए तो कहानी का सामाजिक संदर्भ समाप्त हो जाता है। प्रेमचंद संकेत करते हैं कि लगातार शोषण, भूख, अपमान और अवसरों के अभाव ने उनके व्यक्तित्व को विकृत कर दिया है। इसलिए कफन को केवल चरित्रों के नैतिक पतन की कथा नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की विफलता के रूप में पढ़ना अधिक उचित है। प्रेमचंद के उपन्यासों में भी दलित चेतना व्यापक सामाजिक संदर्भों में विकसित होती है। गोदान में ग्रामीण समाज की जातिगत संरचना, आर्थिक विषमता तथा सामाजिक संबंधों का अत्यंत व्यापक चित्रण मिलता है। उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि किसान, मजदूर और निम्नवर्गीय समुदाय बहुआयामी शोषण का सामना करते हैं। यहाँ जाति और वर्ग का अंतर्संबंध स्पष्ट दिखाई देता है। सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक संसाधन और सत्ता का वितरण जातिगत संरचना से गहराई से प्रभावित है।

कर्मभूमि में सामाजिक समानता, नैतिक नेतृत्व और जन–जागरण का स्वर प्रमुख है। प्रेमचंद इस उपन्यास में सामाजिक परिवर्तन को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रखते, बल्कि सामाजिक न्याय और जातिगत समानता को भी राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का अनिवार्य आधार मानते हैं। उनके अनुसार स्वतंत्र राष्ट्र तभी सफल होगा जब समाज के सबसे वंचित वर्गों को समान अधिकार प्राप्त होंगे।

रंगभूमि में सूरदास का चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दृष्टिहीन होने के बावजूद वह अन्याय के विरुद्ध नैतिक प्रतिरोध का प्रतीक बनकर उभरता है। यद्यपि उपन्यास का केंद्रीय संघर्ष भूमि, सत्ता और औपनिवेशिक प्रभाव से जुड़ा है, फिर भी इसमें सामाजिक बहिष्कार, वर्गीय विषमता तथा कमजोर वर्गों के अधिकारों का प्रश्न निरंतर उपस्थित रहता है। सूरदास का संघर्ष मानवीय गरिमा और सामाजिक न्याय की व्यापक अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है।

समग्र रूप से देखा जाए तो प्रेमचंद की दलित चेतना करुणा, मानवतावाद और सामाजिक सुधार पर आधारित है। वे हिंसात्मक प्रतिरोध के पक्षधर नहीं हैं, बल्कि नैतिक परिवर्तन, सामाजिक जागरण और मानवीय संवेदना के माध्यम से समानता स्थापित करना चाहते हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता भी है और आधुनिक दलित विमर्श की दृष्टि से उनकी सबसे अधिक चर्चित सीमा भी। आधुनिक दलित साहित्य जहाँ आत्मप्रतिनिधित्व, अस्मिता और संरचनात्मक प्रतिरोध पर बल देता है, वहीं प्रेमचंद सामाजिक नैतिकता और मानवीय विवेक को परिवर्तन का आधार मानते हैं।फिर भी यह निर्विवाद है कि हिंदी कथा साहित्य में दलित जीवन को गंभीर साहित्यिक विमर्श का विषय बनाने का ऐतिहासिक श्रेय प्रेमचंद को ही प्राप्त है। उन्होंने दलित पात्रों को समाज के केंद्र में स्थापित कर

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

यह सिद्ध किया कि किसी भी सभ्य समाज का मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह अपने सबसे वंचित नागरिकों के साथ कैसा व्यवहार करता है। उनके साहित्य में दलित चेतना केवल शोषण का दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता, मानवीय गरिमा और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का एक सतत साहित्यिक अभियान है। यही कारण है कि स्वतंत्रता के लगभग आठ दशक बाद भी प्रेमचंद का कथा साहित्य सामाजिक न्याय, समावेशी विकास और संवैधानिक मूल्यों के संदर्भ में समान रूप से प्रासंगिक बना हुआ है।

4, सामाजिक न्याय, डेटा विश्लेषण एवं चर्चा— प्रेमचंद का कथा साहित्य केवल सामाजिक यथार्थ का दर्पण नहीं है, बल्कि भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की अवधारणा का एक सशक्त साहित्यिक प्रतिपादन भी है। उनके कथा—संसार में सामाजिक न्याय का आशय केवल विधिक समानता या राजनीतिक अधिकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति की मानवीय गरिमा, समान अवसर, श्रम के सम्मान, संसाधनों पर समान अधिकार तथा जातिगत भेदभाव से मुक्ति से है। प्रेमचंद ने ऐसे समय में सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर बल दिया, जब भारतीय समाज कठोर जाति—व्यवस्था, अस्पृश्यता, आर्थिक विषमता तथा सामाजिक बहिष्कार जैसी समस्याओं से जूझ रहा था। उनके साहित्य में दलित पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि न्याय केवल न्यायालयों का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार, नैतिकता और मानवीय संवेदनाओं का भी प्रश्न है।

भारतीय संविधान के निर्माण से पूर्व लिखे गए प्रेमचंद के साहित्य में समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय जैसे मूल्यों का स्पष्ट संकेत मिलता है। संविधान के अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार), अनुच्छेद 15 (भेदभाव का निषेध), अनुच्छेद 17 (अस्पृश्यता का उन्मूलन), अनुच्छेद 21 (गरिमामय जीवन का अधिकार), अनुच्छेद 38 (सामाजिक व्यवस्था की स्थापना) तथा अनुच्छेद 46 (अनुसूचित जातियों एवं अन्य कमजोर वर्गों के हितों का संरक्षण) जिन आदर्शों की स्थापना करते हैं, उनके मूल तत्व प्रेमचंद के कथा साहित्य में पूर्वाभास के रूप में दिखाई देते हैं। यद्यपि उन्होंने संवैधानिक भाषा का प्रयोग नहीं किया, तथापि उनकी रचनाओं का मूल उद्देश्य एक ऐसे समाज की कल्पना करना था जहाँ मनुष्य का मूल्य उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसकी मानवता से निर्धारित हो। प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों का विषयवस्तु—आधारित गुणात्मक विश्लेषण इस अध्ययन की प्रमुख शोध प्रविधि है। इस विश्लेषण में चयनित कृतियों, सद्गति, ठाकुर का कुआँ, दूध का दाम, मंदिर, कफन, गोदान, कर्मभूमि तथा रंगभूमि को सामाजिक न्याय के विभिन्न संकेतकों के आधार पर अध्ययन किया गया। इन संकेतकों में जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण, श्रम की गरिमा, धार्मिक समानता, शिक्षा एवं अवसर, मानवाधिकार, प्रतिरोध, सामाजिक परिवर्तन तथा लोकतांत्रिक मूल्यों को सम्मिलित किया गया। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी चयनित कृतियों में जातिगत भेदभाव एक केंद्रीय तत्व के रूप में उपस्थित है। सद्गति में दलित व्यक्ति का श्रम शोषित होता है और मृत्यु के बाद भी उसे सम्मान नहीं मिलता। ठाकुर का कुआँ में जल जैसे बुनियादी संसाधन पर जातिगत नियंत्रण सामाजिक असमानता का प्रतीक बन जाता है। मंदिर धार्मिक संस्थाओं में व्याप्त भेदभाव को उजागर करती है, जबकि दूध का दाम श्रम के आर्थिक मूल्य और सामाजिक सम्मान के प्रश्न को सामने लाती है। गोदान तथा रंगभूमि में जाति

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 01, Issue 01, Jan 2018

और वर्ग का अंतर्संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रेमचंद के लिए सामाजिक न्याय बहुआयामी अवधारणा है, जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक सभी स्तरों पर सक्रिय है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने सामाजिक न्याय के किसी एक पक्ष पर बल नहीं दिया, बल्कि उसे बहुआयामी सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखा। उनके साहित्य में न्याय का संबंध केवल विधिक अधिकारों से नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार, नैतिक उत्तरदायित्व और मानवीय संबंधों से भी है। शोध के दौरान विषयवस्तु विश्लेषण के आधार पर सामाजिक न्याय के प्रमुख संकेतकों की उपस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। गुणात्मक विश्लेषण से अनेक प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के साहित्य में जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और आर्थिक शोषण सबसे प्रमुख विषय हैं। वहीं सामाजिक परिवर्तन, मानवीय गरिमा तथा लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना उनके साहित्य का अंतिम लक्ष्य है। शोध की परिकल्पनाओं का परीक्षण भी विषयवस्तु विश्लेषण के आधार पर किया गया। प्रथम परिकल्पना यह थी कि प्रेमचंद के कथा साहित्य में दलित चेतना का सशक्त चित्रण मिलता है। चयनित कृतियों के विश्लेषण से यह परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है, क्योंकि सभी प्रमुख रचनाओं में दलित जीवन की समस्याएँ और सामाजिक विषमताएँ स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई हैं। द्वितीय परिकल्पना के अनुसार प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक न्याय एवं समानता के मूल्यों को प्रोत्साहित करता है। ठाकुर का कुआँ, मंदिर, गोदान तथा कर्मभूमि के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि लेखक जातिगत विशेषाधिकारों के स्थान पर समान नागरिक अधिकारों की स्थापना का समर्थन करते हैं। अतः यह परिकल्पना भी स्वीकार की जाती है।

तृतीय परिकल्पना यह थी कि प्रेमचंद ने जातिगत शोषण के विरुद्ध साहित्यिक प्रतिरोध प्रस्तुत किया है। यद्यपि उनका प्रतिरोध आधुनिक दलित साहित्य की भाँति उग्र या क्रांतिकारी नहीं है, तथापि नैतिक दृष्टि से उन्होंने जातिगत अन्याय को स्पष्ट रूप से अस्वीकार किया है। इसलिए यह परिकल्पना भी प्रमाणित होती है।

शून्य परिकल्पना, जिसमें यह माना गया था कि प्रेमचंद के साहित्य में दलित चेतना प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त नहीं हुई है, अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर अस्वीकार कर दी जाती है।

शोध के दौरान प्राप्त निष्कर्षों की चर्चा से अनेक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। पहला, प्रेमचंद ने दलित पात्रों को हिंदी साहित्य में मानवीय गरिमा प्रदान की। उनके पूर्व अधिकांश साहित्य में दलित पात्र गौण अथवा रूढ़िबद्ध रूप में चित्रित होते थे, जबकि प्रेमचंद ने उन्हें सामाजिक संरचना के केंद्रीय पात्र बनाया। दूसरा, उन्होंने जातिगत अन्याय को केवल सामाजिक समस्या नहीं माना, बल्कि नैतिक विफलता के रूप में प्रस्तुत किया। तीसरा, उन्होंने सामाजिक परिवर्तन का आधार हिंसक संघर्ष नहीं, बल्कि नैतिक जागरण, शिक्षा, समानता और मानवीय संवेदना को माना। हालाँकि आधुनिक दलित विमर्श की दृष्टि से प्रेमचंद के साहित्य की कुछ सीमाएँ भी दिखाई देती हैं। उनकी रचनाओं में दलित पात्रों का प्रतिरोध अपेक्षाकृत सीमित है और सामाजिक परिवर्तन का आधार प्रायः

©IJARMS JOURNAL, 2018

सवर्ण समाज की नैतिक चेतना पर अधिक निर्भर दिखाई देता है। आधुनिक आंबेडकरवादी दलित विमर्श जहाँ संरचनात्मक परिवर्तन, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और आत्मप्रतिनिधित्व पर बल देता है, वहीं प्रेमचंद का समाधान सामाजिक सुधार और मानवीय संवेदना के माध्यम से विकसित होता है। यह अंतर उनके ऐतिहासिक कालखंड और वैचारिक पृष्ठभूमि के कारण स्वाभाविक माना जा सकता है। फिर भी यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि प्रेमचंद ने अपने समय की सामाजिक सीमाओं के भीतर रहते हुए जातिगत अन्याय के विरुद्ध जिस प्रकार साहित्यिक हस्तक्षेप किया, वह भारतीय साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि है। उन्होंने पहली बार दलित जीवन को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया और सामाजिक न्याय को साहित्य का नैतिक उद्देश्य बनाया। उनके साहित्य में दलित चेतना केवल करुणा नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा की स्थापना का सतत प्रयास है। समकालीन भारत में सामाजिक न्याय की चर्चा संविधान, मानवाधिकार, सतत विकास लक्ष्य, समावेशी विकास तथा सामाजिक समरसता जैसे विषयों से जुड़ चुकी है। इन सभी संदर्भों में प्रेमचंद का साहित्य नई प्रासंगिकता प्राप्त करता है। उनकी रचनाएँ यह संदेश देती हैं कि केवल आर्थिक विकास किसी समाज को न्यायपूर्ण नहीं बना सकता; जब तक सामाजिक समानता, सम्मान, अवसरों की समान उपलब्धता तथा मानवीय गरिमा सुनिश्चित नहीं होगी, तब तक वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं है।

अतः प्रस्तुत अध्ययन के डेटा विश्लेषण एवं चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रेमचंद का कथा साहित्य सामाजिक न्याय के भारतीय विमर्श की एक महत्वपूर्ण वैचारिक आधारशिला है। उनका साहित्य न केवल अपने समय की सामाजिक विसंगतियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है, बल्कि एक ऐसे मानवीय समाज की कल्पना भी करता है जहाँ जाति, धर्म, वर्ग अथवा जन्म के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव न हो। यही कारण है कि प्रेमचंद की रचनाएँ आज भी सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक मूल्यों, मानवाधिकार तथा समावेशी समाज के निर्माण की दिशा में प्रेरणास्रोत बनी हुई हैं।

5, निष्कर्ष– प्रस्तुत शोध का उद्देश्य मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में निहित दलित चेतना एवं सामाजिक न्याय की अवधारणा का समालोचनात्मक अध्ययन करना था। अध्ययन के अंतर्गत 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'दूध का दाम', 'मंदिर', 'कफन', 'गोदान', 'कर्मभूमि' तथा 'रंगभूमि' जैसी प्रमुख कृतियों का गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया। विषयवस्तु विश्लेषण, साहित्य समीक्षा तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा के आलोक में प्राप्त निष्कर्ष यह सिद्ध करते हैं कि प्रेमचंद का कथा साहित्य भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत विषमता, अस्पृश्यता, आर्थिक शोषण तथा सामाजिक अन्याय का सशक्त दस्तावेज है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि प्रेमचंद ने दलित पात्रों को पहली बार हिंदी कथा साहित्य के केंद्र में स्थापित किया। उनके साहित्य में दलित केवल करुणा के पात्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक संरचना की विसंगतियों को उद्घाटित करने वाले सशक्त मानवीय चरित्र हैं। 'सद्गति' में दुखी चमार की त्रासदी, 'ठाकुर का कुआँ' में गंगी का संघर्ष, 'दूध का दाम' में श्रम के सम्मान का प्रश्न तथा 'मंदिर' में धार्मिक समानता की आकांक्षा सामाजिक न्याय की व्यापक अवधारणा को अभिव्यक्त करते हैं। वहीं 'गोदान', 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' सामाजिक, आर्थिक एवं

नैतिक असमानताओं की गहरी पड़ताल करते हैं। अध्ययन यह भी सिद्ध करता है कि प्रेमचंद का साहित्य भारतीय संविधान में निहित समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व एवं सामाजिक न्याय के मूल्यों के साथ उल्लेखनीय साम्य रखता है। यद्यपि उनका साहित्य संविधान–पूर्व काल में लिखा गया था, फिर भी उसमें मानवीय गरिमा, अवसर की समानता तथा सामाजिक समावेशन के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। इस दृष्टि से प्रेमचंद का साहित्य भारतीय लोकतांत्रिक चेतना का पूर्वगामी साहित्यिक स्वर कहा जा सकता है।

शोध के दौरान यह तथ्य भी सामने आया कि प्रेमचंद का दृष्टिकोण आधुनिक आंबेडकरवादी दलित विमर्श से कुछ भिन्न है। आधुनिक दलित साहित्य जहाँ आत्मप्रतिनिधित्व, अस्मिता और संरचनात्मक परिवर्तन पर बल देता है, वहीं प्रेमचंद सामाजिक सुधार, नैतिक जागरण तथा मानवीय संवेदना को परिवर्तन का आधार मानते हैं। यह अंतर उनके ऐतिहासिक संदर्भ और वैचारिक पृष्ठभूमि का परिणाम है। अतः प्रेमचंद का मूल्यांकन उनके समय की सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाना अधिक न्यायोचित है।

प्रस्तुत अध्ययन की परिकल्पनाएँ विषयवस्तु विश्लेषण के आधार पर पुष्ट हुईं। यह सिद्ध हुआ कि प्रेमचंद ने जातिगत भेदभाव एवं सामाजिक अन्याय का प्रभावी चित्रण किया तथा सामाजिक न्याय, समानता एवं मानवीय गरिमा की स्थापना के पक्ष में साहित्यिक हस्तक्षेप किया। उनकी रचनाएँ आज भी सामाजिक समरसता, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा समावेशी समाज के निर्माण के लिए प्रेरणास्रोत हैं। समकालीन भारत में सामाजिक न्याय, सामाजिक समावेशन, मानवाधिकार, सतत विकास लक्ष्य तथा संवैधानिक मूल्यों की चर्चा के संदर्भ में प्रेमचंद का साहित्य और अधिक प्रासंगिक हो जाता है। उनका कथा साहित्य हमें यह संदेश देता है कि किसी भी सभ्य समाज की वास्तविक पहचान उसके सबसे वंचित नागरिकों के सम्मान, अधिकार और अवसरों की समानता से होती है। प्रेमचंद का कथा साहित्य भारतीय समाज की सामाजिक चेतना, लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवीय गरिमा की स्थापना का एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। दलित चेतना एवं सामाजिक न्याय के संदर्भ में उनका योगदान केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि सामाजिक, नैतिक और वैचारिक भी है। वर्तमान समय में, जब समानता, समावेशन और सामाजिक न्याय वैश्विक विमर्श के केंद्र में हैं, तब प्रेमचंद का साहित्य भारतीय समाज के लिए एक महत्वपूर्ण बौद्धिक एवं नैतिक मार्गदर्शक के रूप में अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है।

अनुशंसाएँ –

1. ''विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के हिंदी पाठ्यक्रमों में प्रेमचंद के दलित चेतना संबंधी साहित्य का व्यापक अध्ययन शामिल किया जाए।''

2. ''प्रेमचंद की कहानियों का अध्ययन भारतीय संविधान के सामाजिक न्याय एवं समानता संबंधी प्रावधानों के साथ तुलनात्मक रूप से कराया जाए।''

3. ''दलित विमर्श, मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय के अंतर्विषयी अध्ययन में प्रेमचंद के साहित्य को प्रमुख स्रोत के रूप में सम्मिलित किया जाए।''

4. ''प्रेमचंद की रचनाओं पर आधारित डिजिटल अभिलेख तथा मुक्त ई–पुस्तक संग्रह विकसित किए जाएँ, ताकि युवा पीढ़ी तक उनकी पहुँच बढ़ सके।''

5. ''विद्यालय स्तर पर सद्गति, ठाकुर का कुआँ तथा मंदिर जैसी कहानियों के माध्यम से सामाजिक समानता एवं संवैधानिक मूल्यों का शिक्षण किया जाए।''

6. ''प्रेमचंद के साहित्य पर दलित दृष्टिकोण, नारीवादी दृष्टिकोण तथा उत्तर–औपनिवेशिक दृष्टिकोण से संयुक्त शोध को प्रोत्साहित किया जाए।''

7. ''राष्ट्रीय शिक्षा नीति, के समावेशी शिक्षा सिद्धांतों के संदर्भ में प्रेमचंद के साहित्य का पुनर्पाठ किया जाए।''

8. ''प्रेमचंद के साहित्य पर आधारित नाटक, वृत्तचित्र एवं डिजिटल शिक्षण सामग्री का निर्माण किया जाए।''

9. ''दलित चेतना एवं सामाजिक न्याय के विषय पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तुलनात्मक साहित्यिक शोध को बढ़ावा दिया जाए।''

10. ''प्रेमचंद की रचनाओं का भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में उच्च–गुणवत्ता वाले अनुवाद तैयार किए जाएँ ताकि उनका वैश्विक अध्ययन विस्तृत हो सके।''

11. ''ग्रामीण समाज, सामाजिक समरसता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों से संबंधित सरकारी एवं गैर–सरकारी जागरूकता कार्यक्रमों में प्रेमचंद के साहित्य का उपयोग किया जाए।''

12. ''प्रेमचंद के साहित्य को सतत विकास लक्ष्य, सामाजिक समावेशन तथा मानवाधिकार शिक्षा से जोड़कर नए शोध प्रारम्भ किए जाएँ।''

13. ''भविष्य के शोध में प्रेमचंद की तुलना ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाले, मोहनदास नैमिशराय, तुलसीराम तथा अन्य समकालीन दलित साहित्यकारों से करते हुए दलित चेतना के विकास का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए।''

संदर्भ सूची–

1. प्रेमचंद. 'मानसरोवर' (भाग 1–8). हंस प्रकाशन, इलाहाबाद।

2. प्रेमचंद. 'गोदान'. सरस्वती प्रेस।

3. प्रेमचंद. 'कर्मभूमि'. सरस्वती प्रेस।

4. प्रेमचंद. 'रंगभूमि'. सरस्वती प्रेस।

5. प्रेमचंद. 'सेवासदन'. सरस्वती प्रेस।

6. प्रेमचंद. 'निर्मला'. सरस्वती प्रेस।

7. प्रेमचंद. 'गबन'. सरस्वती प्रेस।

©IJARMS JOURNAL, 2018

8. प्रेमचंद. 'कायाकल्प'. सरस्वती प्रेस।

9. राय, अमृत. 'कलम का सिपाही'. राजकमल प्रकाशन।

10. शर्मा, रामविलास. 'प्रेमचंद और उनका युग'. राजकमल प्रकाशन।

11. सिंह, नामवर. 'इतिहास और आलोचना'. राजकमल प्रकाशन।

12. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. 'हिंदी साहित्य की भूमिका'. राजकमल प्रकाशन।

13. त्रिपाठी, विश्वनाथ. 'हिंदी आलोचना'. राजकमल प्रकाशन।

14. वाजपेयी, नंददुलारे. 'हिंदी साहित्य, बीसवीं शताब्दी'. लोकभारती प्रकाशन।

15. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'. राधाकृष्ण प्रकाशन।

16. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. 'जूठन'. राधाकृष्ण प्रकाशन।

17. लिंबाले, शरणकुमार. 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' (हिंदी अनुवाद). वाणी प्रकाशन।

18. भारती, कंवल. 'दलित विमर्श की भूमिका'. वाणी प्रकाशन।

19. धर्मवीर. 'दलित साहित्य की अवधारणा'. वाणी प्रकाशन।

20. सिंह, बच्चन. 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास'. राधाकृष्ण प्रकाशन।

21. कुमार, नंदकिशोर. 'प्रेमचंद का कथा साहित्य और सामाजिक यथार्थ'. लोकभारती प्रकाशन।

22. सिंह, मैनेजर पांडेय. 'साहित्य और इतिहास दृष्टि'. वाणी प्रकाशन।

23. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास'. लोकभारती प्रकाशन।

24. सरकार, सुमित. 'आधुनिक भारत'. राजकमल प्रकाशन।

25. आंबेडकर, भीमराव रामजी. 'जाति का विनाश

26. आंबेडकर, भीमराव रामजी. 'शूद्र कौन थे?'

27. भारत का संविधान. भारत सरकार, विधि एवं न्याय मंत्रालय।